भाषाओं के बदलते संदर्भ

पुस्तक – भाषा और अधिगम

शारदा कुमारी *

यह सभी स्वीकार करते हैं कि जब बच्चा भाषा सीखता है तो वह एक बहुत बड़ा कार्य करता है। वह यह कार्य इतने कम समय में कर लेता है, यह तथ्य भी व्याख्याओं को चुनौती देता है। हम अपने विषय में यह कल्पना करें कि हम किसी सुदूर द्वीप पर हैं। हम ऐसे लोगों के बीच रह रहे हैं जिनकी न तो हम भाषा जानते हैं, न तो उनकी वर्णमाला पढ़ सकते हैं। कुछ समय बीतने पर और ऐसे कार्यकलाप करके जिनमें क्रिया और भाषा एक साथ काम करती हैं, हम उस भाषा की मौखिक, वाचिक धारा को अर्थाधारित टुकड़ों में तोड़ सकते हैं। यह भी तभी संभव होगा, जब न केवल हम चिर जिज्ञासु, धैर्यवान और सद्भावनापूर्ण हों। ध्वनियों की ये विभिन्नता रहित अंतहीन धाराएँ मातृभाषा सीख रहे शिशु की दो समस्याओं में से सिर्फ़ एक का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। उसके सामने तो समान प्रकार के अनुभव भी होते हैं। यह कुछ ऐसा है जिसकी हम समुचित ढंग से कल्पना नहीं कर सकते। कारण है यदि एक बार हम अपने अनुभवों को विश्व की वस्तुओं के रूप में संगठित कर लेते हैं, तो कभी भी उस प्रक्रिया को उल्टा नहीं कर सकते। संभवत: यही इस रहस्य का भेद है, यही इसकी व्याख्या है कि बच्चा किस तरह से अधिगम का यह आश्चर्यजनक कार्य कर पाता है।

जेम्स ब्रिटन

भाषा सीखने की प्रक्रिया का रहस्योद्घाटन करते हुए 'भाषा और अधिगम' के लेखक जेम्स ब्रिटन भाषा की शिक्षा को मात्र एक स्कूली विषय के रूप में न देखने के स्थान पर बच्चों के समग्र विकास के रूप में देखने की वकालत करते हैं। जाने-माने शिक्षाविद् प्रो. कृष्ण कुमार द्वारा लिखित पुस्तक का आमुख पाठकों को पुस्तक की महत्ता से अवगत करा देता है, " इस समय जबकि शैक्षिक सुधारों की चर्चा बच्चों की दैनिक ज़िंदगी

* *वरिष्ठ प्रवक्ता*, मंडलीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, सेक्टर - VIII, आर.के.पुरम्, नयी दिल्ली

के छोटे–छोटे संदर्भो को ध्यान में रखकर की जा रही है, जेम्स ब्रिटन की कालजयी पुस्तक 'लैंग्वेज एंड लर्निंग' का हिंदी में प्रकाशन एक शुभ घटना है। ......यह आशा की जा सकती है कि भारत में भी यह किताब भाषा शिक्षण के क्षेत्र में व्याप्त जकड़न को दूर करने में कामयाब होगी। ''

यद्यपि पुस्तक में तकनीकी शब्दों की भरमार है और देवनागरी लिपि में अँग्रेज़ी के कई वाक्य हैं जो पढ़ने के प्रवाह में रुकावट डालते हैं, फिर भी भाषा के प्रति समझ बनाने में यह पुस्तक कामयाबी हासिल करके ही छोड़ती है।

पुस्तक के विभिन्न अध्यायों में आवाजाही करने से पहले पुस्तक के शीर्षक 'भाषा और अधिगम' की विवेचना करते हैं। बच्चों की शिक्षा एवं अध्यापन कार्य से जुड़े लोगों के लिए 'अधिगम' शब्द बहुत ही जाना–पहचाना–सा है पर इस क्षेत्र से इतर पाठक शायद शीर्षक पर अटक जाए पर एक बार जब वे पन्नों पर अपनी निगाहें दौडाएँगे तो उन्हें यह पुस्तक किसी तिलिस्म से कम नहीं लगेगी। संभवतया लेखक इस शीर्षक के माध्यम से यह बताना चाहता हो कि भाषा सिखाने का काम करने वालों को पहले भाषा और सीखने और इसके साथ ही दोनों के बीच के आपसी संबंधों को बेहद संजीदगी और बारीकी के साथ समझने की ज़रुरत है।

इस पुस्तक को मुख्यतः दो हिस्सों में बाँटकर देखा जा सकता है। पहले हिस्से में अध्याय एक, तीन और पाँच को लिया जा सकता है। पहले हिस्से में किताब के आधारभूत सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है और उसके आधार पर भाषा व चिंतन पर विस्तार से चर्चा तीसरे और पाँचवें अध्याय में की गयी है। 'भाषा और अधिगम' के दूसरे हिस्से में अध्याय दो, चार और छह को लिया जा सकता है। इन अध्यायों में बोलना सीखने, स्कूल में किए जाने वाले काम और किशोरावस्था के दौरान भाषा के उपयोग पर बात की गई है।

प्रथम अध्याय मुख्यतः भाषा के ज़रिए विश्व निरूपण की बात का खुलासा करता है। लेखक स्पष्ट करता है कि मौखिक रूप से संगठित सभी कुछ मात्र शब्दों का समूह नहीं होता। उनमें अनेक प्रकार के निरूपण गुँथे होते हैं, जैसे कि–इंद्रियों से सीधे ही गृहीत आकृतियाँ, नेत्रों से आंतरिक तौर पर गृहीत अनुभव, ध्वनि, गीत, स्पर्श, गंध और स्वाद तथा इसके साथ ही परिवेश के बारे में हमारे विचार और तार्किक विश्वास, मिथक, धर्म और कलाओं से उद्‌भूत आकृतियाँ भी भाषा सीखने में मदद करती हैं। पुस्तक के ज़रिए पाठक अपने बहुत से पूर्व निर्धारित और गहरे पैठे विचारों से संघर्ष करते पाए जाएँगे। हममें से बहुतों के ये विचार होंगे कि इंसानों की तरह ही जानवरों की भाषा होती है और हम उस भाषा को समझ नहीं पाते हैं। ब्रिटन इंसानों की तरह ही जानवरों से अलग करने के लिए दो विशेषताएँ चुनते हैं जिनमें पहली विशेषता 'बोलना' है और दूसरी विशेषता 'तार्किक होना' है। इंसान भाषा के ज़रिए तरह–तरह के वर्गीकरण कर सकते हैं जो जानवर नहीं कर पाते। यह कोटि निर्धारण

अर्थात् वर्गीकरण करने की प्रक्रिया ही अनुभवों के निरूपण में संगठनात्मक भूमिका निभाती है।

यद्यपि अनुभवों के निरूपण के लिए इंसान के पास और भी बहुत सी ज़रूरी चीज़ें हैं पर चूँकि भाषा सुसंगठित होती है अत: यह निरूपण की प्रक्रिया में तुलनात्मक रूप से बेहतर भूमिका निभाती है।

पुस्तक में 'बोलना सीखने' पर बहुत ही विस्तार से चर्चा की गई है। संभवतया इसलिए कि हम सभी भाषा सीखने के आरंभ में पहले-पहल बोलना ही सीखते हैं अभिभावकों और अध्यापकों की आमतौर पर यह धारणा होती है कि बोलना सीखने की शुरुआत 'अनुकरण' आधारित होती है अर्थात् बच्चे नकल और अनुकरण के आधार पर सीखते हैं लोगों का बोलना सीखने के संदर्भ में यह सीमित जवाब शायद इसलिए होता होगा क्योंकि मातृभाषा इंसानी समाजों में इतनी रची-बसी व पगी होती है कि उसे सीखने की प्रक्रियाओं और उसके दूसरे बहुत से पहलू हमारे विमर्श से ओझल ही रहते हैं।

हमारा ध्यान इस बात पर कम ही जाता है कि अधिकांश बच्चे बोलना सीखने से पहले ही निर्देशों का पालन करना आरंभ कर देते हैं। इसके साथ ही वे ध्वनियों के साथ खिलवाड़ भी शुरू कर देते हैं। उदाहरण के तौर पर- आमलेट सड़क पे लेट, रील री रील री, आदि। बच्चों के द्वारा इन शब्द खेलों में हम बड़े भी शामिल होकर पूरा मज़ा उठाते हैं पर दुख की बात यह है कि ध्वनियों की बारातें कक्षाओं में आगमन नहीं कर पाती।

ब्रिटन अध्यापकों को बता देना चाहते हैं कि शैशवावस्था के दौरान अधिगम का एक महत्वपूर्ण साधन है- 'संवाद' यानी कि बातचीत। बच्चों की आपस में बातचीत, बच्चों की अध्यापकों से बातचीत, क्या इसके लिए विद्यालय में किसी भी तरह का कोई प्रावधान या गुँजाइश रखी गई है? हम सभी का उत्तर 'न' में होगा और यह बात लेखक को मान्य नहीं। हमारी विद्यालयी संस्कृति 'फिंगर ऑन योअर लिप्स' को बढ़ावा देने वाली है। ऐसे में क्या हम बच्चों द्वारा भाषा सीखने की राह में रोड़े नहीं अटका रहे? जेम्स तो नाटकों जैसे कि घर-घर, दुकान-दुकान आदि खेल नाटकों को भी बच्चों द्वारा भाषा सीखने का सर्वोत्तम औज़ार मानते हैं। पर इस तरह के प्राकृतिक व सहज रूप से खेले जाने वाले नाटक भी हमारे शिक्षण आचरण का हिस्सा नहीं बन पाए हैं। नाटक तो हम केवल तभी करवाते हैं जब वार्षिक या अन्य कोई उत्सव का आयोजन होता है। ब्रिटन के शब्दों में, ''यह एक समझौता है कि प्राथमिक स्तर पर लिखे हुए नाटकों का माता-पिता और दर्शकों के लिए मंचन करना बहुत कम उपयुक्त गतिविधि है। वास्तव में ये नाटक के उन पक्षों के विरोध में खड़े होते हैं, जो इस अवस्था में शैक्षिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।''

पुस्तक के माध्यम से इस बात की कल्पना करना बहुत ही रोचक और विचारणीय है कि भाषा के माध्यम से हम अपने भीतर पहले वस्तुओं की दुनिया रचते हैं फिर इस दुनिया में आस-पास रहने वाले जीव (व्यक्ति/पशु-पक्षी) आदि शामिल होने लगते हैं और तब कहीं

जाकर इस दुनिया में विचार पनपने लगते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि 'विचार करने' का कार्य भाषा की मदद से हो पाता है। ब्रिटन के शब्दों में– ''जैसे–जैसे बच्चे की चिंतन शक्ति का विकास होता है, उसे सबसे पहले चित्रात्मक अवस्था पार करते हुए और फिर भाषिक क्षमता की अवस्था को लाँघते हुए देखा जा सकता है। यदि इसे क्रमांकित करें तो एक बच्चा ऐसी भाषा का प्रयोग करता है, जिसमें संगठित करने की क्षमता होती है जो वह चिंतन में प्राप्त नहीं कर सकता, वह भाषा में जो भी व्यवस्थित करता है उसे चिंतन में भी व्यवस्थित करने में सक्षम हो जाता है।

वह पहले तो जटिल अनुभवों को शब्द का आकार देकर फिर उन अभिव्यक्तियों पर विचार करके अपनी सांगठनिक क्षमता के क्षेत्र का विस्तार करता है।

उसकी चिंतन को संगठित करने की क्षमता उसकी भाषा को संगठित करने की क्षमता से कहीं आगे निकल जाती है।

उपर्युक्त चारों बिंदु सुझाते हैं कि भाषा और चिंतन व्यवहार के दो सशक्त अंतर्वर्तन करने वाले रूप हैं, परंतु इनकी उत्पत्ति और विकास के रूप भिन्न हैं। पुस्तक के पाँचवें अध्याय 'भाषा और चिंतन' में ब्रिटन स्पष्ट करते हैं कि बच्चों और बड़ों दोनों में सामान्य भाषण अधिकांशत: अभिव्यक्तिपरक होने के कारण सहज बोधन की अनेक प्रक्रियाओं को वहन करने वाला होता है।

लेखक अध्यापक को सावधान करते हैं कि बच्चों के विचारों को सादृश्य, साधर्म्य और समुचित शब्दावली प्रदान करने की संकल्पना सीमित और गलत दिशा में ले जाने वाली है। उन्होंने पुन: अध्यापकों को आगाह किया है कि हम जो शब्द सप्रयास प्रस्तुत करते हैं, वे सभी सीमित प्रयोग के तथा आवश्यकता आधारित होते हैं। इनमें बच्चों की भाषा की धारा को जीवंत बनाने की क्षमता नहीं होती।

यह जानना कई पाठकों के लिए रोमांचक हो सकता है कि भाषा कैसे–कैसे हमारे जीवन में अपने उपयोग के स्वरूप को बदलती जाती है। इस स्वरूप को बदलने के साथ पुराना स्वरूप तो बरकरार रहता है, लेकिन नया स्वरूप भी जुड़ जाता है। आरंभ में भाषा सीखने के समय हम इसका उपयोग रोज़ाना के जीवन में प्रतिभागी के तौर पर अपनी भागीदारी करने के लिए करते हैं फिर हम दर्शक के तौर पर भी इसका उपयोग करने लगते हैं और आखिर में हम चिंतन करने में इस औज़ार को काम लेने लगते हैं। इस बात की कल्पना करना भी रोचक हो सकता है कि भाषा के ज़रिए हम पहले वस्तुओं की दुनिया रचते हैं फिर उसमें व्यक्ति शामिल होने लगते हैं।

पुस्तक अपने अंतिम भाग में उन शाश्वत प्रश्नों से जूझती है जिनसे हम सबका सामना अपनी किशोरावस्था में ज़रूर हुआ होता है। जैसे स्वयं के वैयक्तीकरण और समाजीकरण के बीच तालमेल कैसे बिठाएँ? किस मानवीय संबंधों के जाल के साथ स्वयं को जोड़ें और किससे दूर रहें? इन सवालों के साथ जूझते हुए किशोरावस्था में चिंतन में परिपक्वता की शुरुआत होती है जिसे लेखक स्वचिंतन पर

चिंतन करने यानी विश्लेषण करने की क्षमता कहते हैं।

लेखक ने इस बात को बहुत ज़ोर देकर कहा है कि भाषा की जड़ें प्रत्यक्ष अनुभव में होती हैं। परिणामत: प्राथमिक स्तर पर बातचीत और क्रियाकलाप पर सबसे अधिक बल देना चाहिए। यह बात कहीं न कहीं नीतिकारों को सावधान कर देना चाहती है कि अपने स्थानीय जीवन से कटी मानक भाषा सिखाने में और अंतर्राष्ट्रीय संपर्क भाषा व ताकत की भाषा के नाम पर अंग्रेज़ी रटवाने में जुटे तमाम स्कूली तंत्र व्यक्ति विकास की असफल परियोजना का संचालन कर रहे हैं।

इस पुस्तक की सबसे बड़ी खूबी यह है कि यह अपने सैद्धांतिक ढाँचे के अंतर्गत कही जा रही बातों की व्याख्या या विश्लेषण या अर्थ उद्घाटन आदि बच्चों द्वारा बोली या लिखी जाने वाली भाषा के उदाहरण भी लेती और उन उदाहरणों की मदद से अपने सिद्धांतों को सरल ढंग से समझाते हुई चलती है।

भाषा की दुरूहता कहीं-कहीं झुँझलाहट पैदा करती है और पाठक से अतिरिक्त मेहनत, एकाग्रता तथा प्रेरणा की अपेक्षा करती है। यह पुस्तक ग्रंथ शिल्पी (ई.) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली से प्रकाशित है। इसका मूल्य चार सौ पचास रुपये है।

❑❑❑